Journal Homepage: - www.journalijar.com

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH (IJAR)

Article DOI: 10.21474/IJAR01/23046
DOI URL: http://dx.doi.org/10.21474/IJAR01/23046

ISSN (O): 2320-5407
ISSN (P): 3107-4928

CONFERENCE PAPER

भारतीय संगीत के विकास में 'संगीत रत्नाकर' का योगदान – एक अध्ययन

विनीमा जांगिड़[1] and प्रो. डॉ. स्वाति शर्मा[2]

1. शोधार्थी,संगीत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालयजोधपुर.
2. शोध निर्देशिका एवं सहायक आचार्या,संगीत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालयजोधपुर.

Manuscript Info

Manuscript History
Received: 04 January 2026
Final Accepted: 08 February 2026
Published: March 2026

Key words:-
शारंगदेव संगीत रत्नाकर राग-ताल प्रणाली
प्रबंध संगीत भारतीय संगीतशास्त्र

Abstract

भारतीय संगीत विश्व की प्राचीन और समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं में से एक है, जिसका विकास वैदिक काल से आधुनिक युग तक निरंतर होता रहा। इस विकास में कई आचार्यों और ग्रंथों का योगदान रहा है, जिनमें 13वीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा रचितसंगीत रत्नाकरविशेष महत्व रखता है। शारंगदेव स्वयं कश्मीर के विद्वान ब्राह्मण परिवार से थे और यादव शासक राजा सिंघण के दरबार से जुड़े थे। उनके समय में भारतीय संस्कृति एक संक्रमणकाल से गुजर रही थी—प्राचीन शास्त्रीय परंपराएँ प्रभावी थीं, क्षेत्रीय शैलियाँ विकसित हो रही थीं और विदेशी (विशेषकर फारसी) प्रभाव धीरे-धीरे संगीत एवं कला में प्रवेश कर रहे थे। ऐसे परिवेश में शारंगदेव ने विभिन्न संगीत परंपराओं का समन्वय करते हुए संगीत रत्नाकर का निर्माण किया। संगीत रत्नाकर लगभग 1678 श्लोकों में सात अध्यायों (स्वरगत, राग विवेक, प्रकीर्णक, प्रबंध, ताल, वाद्य, नर्तन) में विभाजित है। इसमें संगीत के तीन प्रमुख अंग—गायन, वादन और नृत्य—का वैज्ञानिक, व्यवस्थित और समग्र अध्ययन मिलता है। शारंगदेव ने नाद, स्वर, 22 श्रुति सिद्धांत, राग और ताल की संरचना, वाद्य यंत्रों का वर्गीकरण तथा नृत्य और अभिनय के नियम प्रस्तुत किए। उन्होंने रागों को मार्ग और देशी रागों में विभाजित किया और राग-समय सिद्धांत का विकास किया। प्रबंध संगीत का विस्तृत वर्णन कर उन्होंने ध्रुपद और ख्याल जैसी शैलियों के लिए आधार तैयार किया। संगीत रत्नाकर ने भारतीय संगीत के सिद्धांत, रचनात्मकता और प्रशिक्षण का व्यवस्थित आधार प्रदान किया। यह ग्रंथ हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत दोनों के लिए मार्गदर्शक बना और आधुनिक शोध, शिक्षा एवं प्रदर्शन के लिए आज भी महत्वपूर्ण है।

"© 2026 by the Author(s). Published by IJAR under CC BY 4.0. Unrestricted use allowed with credit to the author."

Corresponding Author:- विनीमा जांगिड़
Address:- 1. शोधार्थी,संगीत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालयजोधपुर.

यद्यपि यह संकलनात्मक और संस्कृत भाषा में है, फिर भी इसका ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और शैक्षिक मूल्य अत्यधिक है।

Introduction:-

भारतीय संगीत विश्व की अत्यंत प्राचीन, समृद्ध और वैज्ञानिक परंपराओं में से एक है। इसका उद्गम वैदिक काल के सामगान से माना जाता है और समय के साथ यह विविध रूपों में विकसित होता गया। इस दीर्घ विकास-क्रम में अनेक आचार्यों, परंपराओं और ग्रंथों का योगदान रहा है। इनमेंसंगीत रत्नाकरका स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ के रचयिताशारंगदेवहैं, जिन्होंने 13वीं शताब्दी में भारतीय संगीत के सिद्धांत (शास्त्र) और व्यवहार (प्रयोग) को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया। यह ग्रंथ न केवल प्राचीन संगीत परंपराओं का संकलन है, बल्कि यह मध्यकालीन संगीत की स्थिति और उसके संक्रमण को भी स्पष्ट करता है। विशेष रूप से यह उस काल में रचित हुआ जब भारत में मुस्लिम सत्ता का प्रभाव प्रारंभ हो रहा था। इसलिए यह ग्रंथ उस "एकीकृत भारतीय संगीत परंपरा" का प्रतिनिधित्व करता है, जो बाद में हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत में विभाजित हो गई।

शारंगदेव और उनका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य:-

शारंगदेवएक विद्वान ब्राह्मण परिवार से संबंधित थे, जिनकी मूल निवास-स्थली कश्मीर मानी जाती है। उनके पूर्वज समय के साथ दक्षिण भारत की ओर प्रवास कर गए और देवगिरी (वर्तमान महाराष्ट्र) में बस गए, जो उस समय एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और राजनीतिक केंद्र था। शारंगदेव स्वयं यादव वंश के पराक्रमी शासक राजा सिंघन (सिंहणा) के दरबार से जुड़े हुए थे, जहाँ उन्होंने प्रशासनिक कार्यों के साथ-साथ अपनी विद्वत्ता और कलात्मक प्रतिभा का भी परिचय दिया। वे केवल संगीत के ज्ञाता ही नहीं थे, बल्कि आयुर्वेद और दर्शन जैसे विषयों में भी उनकी गहरी रुचि और समझ थी, जो उनके व्यापक ज्ञान और बहुआयामी व्यक्तित्व को दर्शाती है।

शारंगदेव का जीवनकाल, अर्थात् 13वीं शताब्दी, भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण संक्रमणकाल के रूप में देखा जाता है। इस समय एक ओर प्राचीन संस्कृत परंपराएँ अभी भी समाज और विद्या के क्षेत्र में प्रभावी थीं, वहीं दूसरी ओर विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय या 'देशी' शैलियाँ तेजी से विकसित हो रही थीं। इसके अतिरिक्त, इस काल में विदेशी, विशेष रूप से फारसी सांस्कृतिक प्रभाव भी धीरे-धीरे भारतीय जीवन और कला में प्रवेश करने लगे थे। इस प्रकार यह युग विविध सांस्कृतिक धाराओं के मिलन और परिवर्तन का समय था, जिसमें परंपरा और नव्यता दोनों का सह-अस्तित्व दिखाई देता है। ऐसे जटिल और परिवर्तनशील परिवेश में शारंगदेव का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाता है। उन्होंने न केवल पूर्ववर्ती संगीत परंपराओं का गहन अध्ययन किया, बल्कि अपने समय में प्रचलित संगीत शैलियों और प्रवृत्तियों को भी समझते हुए उन्हें एकीकृत रूप में प्रस्तुत किया। उनके द्वारा रचितसंगीत रत्नाकरइसी समन्वयवादी दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें प्राचीन शास्त्रीय सिद्धांतों और समकालीन संगीत व्यवहार का संतुलित और व्यवस्थित समावेश मिलता है। इस प्रकार, शारंगदेव ने भारतीय संगीत को एक व्यापक, संगठित और वैज्ञानिक आधार प्रदान किया, जो आगे चलकर संगीत के विकास में अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ।

संगीत रत्नाकर की प्रकृति और संरचना:-

संगीत रत्नाकरएक महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथ है, जिसमें लगभग 1678 श्लोकों के माध्यम से भारतीय संगीत के सिद्धांतों का विस्तृत और व्यवस्थित वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ को सात अध्यायों, अर्थात् सप्ताध्यायी, में विभाजित किया गया है, जिनमें प्रत्येक अध्याय संगीत के किसी विशिष्ट पक्ष को स्पष्ट करता है। प्रथम अध्याय 'स्वरगत' में नाद और स्वर के मूल सिद्धांतों की चर्चा की गई है, जबकि दूसरे अध्याय 'राग विवेक' में रागों की प्रकृति, वर्गीकरण और उनके लक्षणों का विवेचन मिलता है। तीसरा अध्याय 'प्रकीर्णक' विविध संगीत संबंधी विषयों को समेटता है, वहीं चौथा अध्याय 'प्रबंध' उस समय प्रचलित संगीत रचनाओं के स्वरूप को स्पष्ट करता है। पाँचवें अध्याय में 'ताल' की संरचना और प्रकारों का विश्लेषण किया गया है, छठा अध्याय 'वाद्य' विभिन्न वाद्य यंत्रों के स्वरूप और वर्गीकरण पर प्रकाश डालता है, तथा अंतिम अध्याय 'नर्तन' नृत्य और उससे जुड़े भाव, अंग-प्रयोग और अभिव्यक्ति को समझाता है।

इस प्रकार यह ग्रंथ संगीत के तीनों प्रमुख अंगों—गीत (गायन), वाद्य (वादन) और नृत्य (नर्तन)—का समग्र, संतुलित और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जो इसे भारतीय संगीतशास्त्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत बनाता है।

संगीत की संकल्पना:-

शारंगदेवके अनुसार "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते" अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य—इन तीनों का सम्मिलित रूप ही संगीत कहलाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि संगीत केवल ध्वनि उत्पन्न करने या गायन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक और समग्र कला है, जिसमें विभिन्न तत्वों का संतुलित समन्वय आवश्यक होता है। इसमें नृत्य के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति, ताल के माध्यम से लयात्मक व्यवस्था, तथा गायन और वादन के माध्यम से स्वर की सृष्टि—ये सभी एक साथ मिलकर संगीत को पूर्णता प्रदान करते हैं। इस प्रकार संगीत केवल सुनने की कला नहीं, बल्कि देखने और अनुभव करने की भी प्रक्रिया है, जिसमें भाव, लय और स्वर का सामंजस्य इसे एक सजीव और प्रभावशाली कला रूप बनाता है।

नाद, श्रुति और स्वर का सिद्धांत:-

संगीत रत्नाकरका प्रथम अध्याय नाद, अर्थात् ध्वनि के सिद्धांत पर केंद्रित है।शारंगदेवने नाद को "नाद-ब्रह्म" के रूप में स्वीकार करते हुए इसे परम सत्य का प्रतीक माना है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए संगीत केवल कला नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अनुभूति का माध्यम भी है। उन्होंने नाद के दो रूपों का उल्लेख किया है—अनाहत नाद, जो आंतरिक और अप्रकट ध्वनि है, तथा आहत नाद, जो बाह्य और श्रव्य रूप में अनुभव की जाती है। इस मूल आधार के पश्चात उन्होंने श्रुति और स्वर की अवधारणाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। विशेष रूप से 22 श्रुतियों का सिद्धांत भारतीय संगीत की एक विशिष्ट पहचान है, जिसमें ध्वनि के सूक्ष्म अंतरालों को व्यवस्थित रूप से समझाया गया है। आगे चलकर शारंगदेव ने स्वर व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए सात शुद्ध और बारह विकृत स्वरों का वर्णन किया, जो आधुनिक सप्तक प्रणाली की नींव माने जाते हैं। इस प्रकार, इस अध्याय में ध्वनि से लेकर स्वर तक की संपूर्ण प्रक्रिया का दार्शनिक और वैज्ञानिक समन्वय देखने को मिलता है।

राग प्रणाली का विकास:-

संगीत रत्नाकरका एक अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान राग प्रणाली का सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रतिपादन है।शारंगदेवने रागों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया—मार्ग राग और देशी राग। मार्ग राग वे थे जो प्राचीन शास्त्रीय परंपराओं से संबंधित थे और जिनका आधार अधिक व्यवस्थित तथा पारंपरिक था, जबकि देशी राग वे थे जो लोकजीवन में प्रचलित होकर विकसित हुए और क्षेत्रीय प्रभावों से समृद्ध थे। शारंगदेव ने केवल इन रागों का वर्गीकरण ही नहीं किया, बल्कि लगभग 264 रागों का विस्तार से वर्णन करते हुए उनके स्वरूप, लक्षण, प्रयोग और विशेषताओं को भी स्पष्ट किया। इस प्रकार, उन्होंने रागों की समझ को अधिक व्यवस्थित, स्पष्ट और वैज्ञानिक रूप प्रदान किया, जो आगे चलकर भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ।

राग-समय सिद्धांत:-

उन्होंने रागों के गायन के लिए उपयुक्त समय और ऋतु का भी उल्लेख किया। यह "राग-समय सिद्धांत" भारतीय संगीत की एक विशिष्ट विशेषता है।

पूर्ववर्ती ग्रंथों का प्रभाव और समन्वय:-

संगीत रत्नाकरकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें पूर्ववर्ती संगीत ग्रंथों की परंपराओं का सफल समन्वय किया गया है।शारंगदेवने विशेष रूप सेनाट्यशास्त्र, बृहद्देशीतथादत्तिलम्जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में प्रस्तुत सिद्धांतों को आधार बनाकर उन्हें अपने समय की आवश्यकताओं और प्रचलित संगीत परंपराओं के अनुसार संशोधित और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने न केवल प्राचीन सिद्धांतों को संरक्षित किया, बल्कि उन्हें अधिक स्पष्ट, संगठित और व्यावहारिक भी बनाया। परिणामस्वरूप, यह ग्रंथ प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय संगीत के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में स्थापित होता है, जो संगीत के निरंतर विकास को समझने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

प्रबंध संगीत का विश्लेषण:-

संगीत रत्नाकरमें "प्रबंध" संगीत का अत्यंत विस्तृत और व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है, जो उस समय की प्रमुख संगीत शैली थी।शारंगदेवने प्रबंध को दो मुख्य प्रकारों में विभाजित किया है—निबद्ध और अनिबद्ध। निबद्ध प्रबंध वे होते हैं जो ताल के बंधन में होते हैं, जबकि अनिबद्ध प्रबंध ताल से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप में गाए जाते हैं। इसके साथ ही उन्होंने प्रबंध के प्रमुख अंगों—उद्ग्रह, ध्रुव, अभोग और अंतरा—का भी विस्तार से वर्णन किया, जो इसकी संरचना को स्पष्ट करते हैं। शारंगदेव ने लगभग 260 प्रकार के प्रबंधों का उल्लेख करते हुए उनकी विविधता और समृद्धि को दर्शाया है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रबंध संगीत का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसी के आधार पर आगे चलकरध्रुपदऔरख्यालजैसी प्रमुख शास्त्रीय गायन शैलियों का विकास हुआ, जो आज भी भारतीय संगीत की प्रमुख परंपराओं में सम्मिलित हैं।

ताल प्रणाली का विकास:-

भारतीय संगीत में ताल लयात्मक संरचना का मूल आधार माना जाता है, जो संगीत को समयबद्ध और संतुलित रूप प्रदान करता है।शारंगदेवने ताल के सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए इसे दो प्रमुख भागों—मार्ग ताल और देशी ताल—में विभाजित किया। मार्ग ताल शास्त्रीय और प्राचीन परंपरा से संबंधित माने जाते हैं, जबकि देशी ताल लोक और क्षेत्रीय प्रभावों से विकसित हुए हैं। उन्होंने विशेष रूप से 120 से अधिक देशी तालों का उल्लेख किया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उनके समय में ताल प्रणाली अत्यंत समृद्ध और विकसित अवस्था में थी। इसके साथ ही शारंगदेव ने ताल के मूल तत्वों—लघु, गुरु और प्लुत—का भी विश्लेषण किया, जो समय-मान और मात्रा की गणना के आधार हैं। इस प्रकार, संगीत रत्नाकरमें ताल का अध्ययन केवल व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और गणितीय दृष्टिकोण से भी प्रस्तुत किया गया है, जो इसे संगीतशास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग बनाता है।

वाद्य यंत्रों का वर्गीकरण:-

संगीत रत्नाकरमें वाद्य यंत्रों का अत्यंत व्यवस्थित और वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है, जो भारतीय संगीतशास्त्र की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है।शारंगदेवने वाद्यों को उनकी संरचना और ध्वनि उत्पन्न करने की विधि के आधार पर चार मुख्य वर्गों में विभाजित किया है—तंतु वाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य और घन वाद्य। तंतु वाद्य वे होते हैं जिनमें तारों के कंपन से ध्वनि उत्पन्न होती है, जैसे वीणा; सुषिर वाद्य वे हैं जिनमें वायु के प्रवाह से ध्वनि निकलती है, जैसे बांसुरी; अवनद्ध वाद्य वे हैं जिनमें चमड़े से मढ़े हुए सतह पर आघात करके ध्वनि उत्पन्न की जाती है, जैसे मृदंग; और घन वाद्य ठोस पदार्थ से बने होते हैं, जिनमें आघात से ध्वनि उत्पन्न होती है, जैसे झांझ। इस प्रकार का वर्गीकरण न केवल उस समय के वाद्य ज्ञान को व्यवस्थित रूप देता है, बल्कि आज भी संगीतशास्त्र में समान रूप से मान्य और प्रासंगिक बना हुआ है।

नृत्य और अभिनय:-

संगीत रत्नाकरका अंतिम अध्याय नृत्य पर केंद्रित है। इस अध्याय मेंशारंगदेवने नृत्य कला को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया है—नाट्य, नृत्य और अभिनय। उन्होंने नृत्य के विभिन्न पहलुओं का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है, जिसमें भाव, रस, अंग-उपांग और अभिनय की तकनीक शामिल है। शारंगदेव ने इस अध्याय में नृत्य की सुंदरता और भावाभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया और इसके माध्यम से संगीत और नृत्य के अभिन्न संबंध को स्पष्ट किया। उनकी दृष्टि में नृत्य केवल शरीर की गति नहीं, बल्कि भावों और रसों का संगम है, जो दर्शक के मन पर गहरा प्रभाव डालता है। इसके संदर्भ में उन्होंनेअभिनवगुप्तके विचारों से प्रेरणा ली, जो नाट्य और रस के सिद्धांतों के महान ज्ञाता थे। इस प्रकार शारंगदेव ने नृत्य को भारतीय संगीत और कला का एक आवश्यक और समग्र अंग माना।

गायक और संगीतज्ञ के गुण:-

संगीत रत्नाकरमें आदर्श गायक के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है। शारंगदेव के अनुसार एक श्रेष्ठ गायक वह होता है जिसकी आवाज मधुर और स्पष्ट हो, जिससे श्रोताओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़े। उसे राग और ताल का गहन ज्ञान होना चाहिए, ताकि वह संगीत को सटीक और संतुलित रूप में प्रस्तुत कर सके। इसके साथ ही, गायक अभ्यासशील और अनुशासित होना चाहिए, क्योंकि नियमित अभ्यास ही कला में उत्कृष्टता लाता है। सबसे महत्वपूर्ण गुण भावों की प्रभावी अभिव्यक्ति है, जिससे संगीत केवल ध्वनि नहीं, बल्कि संवेदनाओं और रसों का संचार बन जाता है। यह आदर्श आज भी भारतीय संगीत शिक्षा के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप

में उपयोग किया जाता है और शास्त्रीय प्रशिक्षण में इसका महत्व अनिवार्य माना जाता है। भारतीय संगीत के विकास में**संगीत रत्नाकर**का योगदान बहुआयामी और गहन रहा है। सबसे पहले, इस ग्रंथ ने संगीत के सैद्धांतिक आधार को व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया, जिससे संगीतशास्त्र में स्पष्टता और संरचना आई। इसके माध्यम से प्राचीन मार्ग और लोक देशी परंपराओं का समन्वय हुआ, जिससे भारतीय संगीत का समग्र स्वरूप सामने आया। शारंगदेव ने राग प्रणाली का विस्तार और वर्गीकरण किया, जिससे लगभग 264 रागों की व्यवस्थित जानकारी प्राप्त हुई और राग-समय सिद्धांत का विकास हुआ। इसके अतिरिक्त, यह ग्रंथ उत्तर भारतीय (हिंदुस्तानी) और दक्षिण भारतीय (कर्नाटक) संगीत दोनों के लिए आधारभूत मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। इसके परिणामस्वरूप, बाद के सभी प्रमुख संगीत ग्रंथों और शिक्षण परंपराओं ने इसे मानक स्रोत के रूप में अपनाया।

आधुनिक संदर्भ में भी संगीत रत्नाकर का महत्व कम नहीं हुआ है। यह ग्रंथ आज भी भारतीय संगीत के इतिहास का विश्वसनीय स्रोत माना जाता है और संगीत के मूल सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है। इसके माध्यम से प्राचीन परंपरा और आधुनिक संगीत के बीच एक सेतु स्थापित होता है। शोधकर्ता, संगीत शिक्षक और विद्यार्थी इसे अध्ययन और संदर्भ के लिए आधारभूत ग्रंथ के रूप में उपयोग करते हैं। इसके सिद्धांत और विश्लेषण आज भी संगीत प्रशिक्षण, रचना और प्रदर्शन में प्रासंगिक हैं। हालांकि आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो संगीत रत्नाकर पूरी तरह मौलिक ग्रंथ नहीं है; यह मुख्यतः पूर्ववर्ती ग्रंथों और परंपराओं का संकलन है। साथ ही, इसकी संस्कृत भाषा सामान्य जनता के लिए कठिनाईपूर्ण है, जिससे इसकी पहुँच सीमित होती है। इसके अलावा, आधुनिक संगीत के कुछ रूप और प्रयोग इसमें शामिल नहीं हैं। फिर भी, ऐतिहासिक दृष्टि और सैद्धांतिक मूल्य के आधार पर इसका महत्व अत्यधिक है। यह ग्रंथ भारतीय संगीत की समग्र समझ, विधात्मक प्रशिक्षण और सांस्कृतिक पहचान के लिए अनिवार्य स्रोत माना जाता है।

निष्कर्ष:-

कुल मिलाकर, संगीत रत्नाकरभारतीय संगीत का वह आधारभूत ग्रंथ है जिसने न केवल संगीत के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं को संरचित किया, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए संगीत शिक्षा और रचनात्मक विकास का मार्ग भी प्रशस्त किया। अंततः कहा जा सकता है किसंगीत रत्नाकरभारतीय संगीत के विकास में एक मील का पत्थर है।शारंगदेवने इस ग्रंथ के माध्यम से संगीत को एक वैज्ञानिक, व्यवस्थित और समग्र रूप प्रदान किया। यह ग्रंथ न केवल अपने समय की संगीत परंपराओं का दर्पण है, बल्कि यह भारतीय संगीत के भविष्य के विकास की दिशा भी निर्धारित करता है। इसलिए इसे भारतीय संगीत का "विश्वकोश" कहा जा सकता है।

संदर्भ:-

1. जोषी, डॉ. वन्दना। "भारतीय संगीत में अवनद्ध वाद्यों की भूमिका एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि।"*JETIR*, खंड 6, अंक 6, जून 2019, www.jetir.org. ISSN 2349-5162.
2. सिंह, डॉ. रितु। "संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में प्रतिपादित विषयों का सिंहावलोकन।"*Sangeet Galaxy e-Journal*, खंड 14, अंक 1, जनवरी 2025, पृ. 341-347. UGC-CARE Listed ISSN: 2319-9695.
3. दासगुप्ता, लिपिका, "भारतीय संगीत शास्त्र ग्रंथ परंपरा : एक अध्ययन", प्रेस एंड पब्लिकेशन सेल काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2009
4. चौधरी, सुभद्रा, "शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर 'सरस्वती' व्याख्या और अनुवाद सहित" तृतीय खंड, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006 चटर्जी, गौतम, "संगीत विमर्श", अभिनव गुप्ता अकादमी, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2009